SJIF 2013 = 1.795
ISSN: 2348-3083
An International Peer Reviewed & Referred
SCHOLARLY RESEARCH JOURNAL FOR HUMANITY SCIENCE & ENGLISH LANGUAGE

गीता का शिक्षा दर्शन

डॉ. सतीश चन्द मंगल
(प्रवक्ता)
प्रशिक्षण महाविद्यालय,
केशव विद्यापीठ जामडोली, जयपुर (राजस्थान)

धर्मेन्द्र कुमार शर्मा
(शोधार्थी) श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षक
शिक्षा विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

गीता दर्शन के मूल तत्व –

- कर्मयोग
- आत्मा की अमरता
- निवृत्ति एवं प्रवृत्ति मार्ग का समन्वय
- अपरा एवं परा प्रकृति का भेदता ईश्वर
- कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्ति योग का समन्वय
- स्थित प्रज्ञ अथवा पूर्ण मानव का आदर्श

गीता दर्शन का शिक्षा–उपागम –

1. गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ
2. शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्देश्य
3. शिक्षण–विधि –
   - कर्म योग
   - ज्ञान योग
   - भक्ति योग विधि
4. पाठ्यचर्या –
   - अपरा विद्या
   - परा विद्या
5. शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध

श्रीमद भगवतगीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। यह ग्रन्थ वैदिक धर्म के भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान आज करीब ढाई हजार वर्ष से सर्वमान्य तथा प्रमाणस्वरूप हो रहा है। भारत के लोकप्रिय धर्मग्रन्थ गीता में प्रकट दार्शनिक विचारों का शिक्षा–दर्शन

के निर्माण एवं विकास में अपूर्व योगदान है। गीता–दर्शन के शिक्षा उपागम देश–काल की सीमा से परे सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है जिनके आधार पर शिक्षा व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकते है। गीता का प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का सन्देश आज मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है। फल की आसक्ति का त्याग कर ही कर्म, स्वार्थ के धरातल से उपर उठकर कल्याण का साधन बन सकता है। गीता मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर बल देती है और निःस्वार्थ कर्मशील जीवन का समर्थन करती है। आज मानवता के लिए इस शिक्षा की बहुत उपादेयता है।

भारत के लोकप्रिय धर्मग्रन्थ गीता में प्रकट दार्शनिक विचारों का शिक्षा–दर्शन के निर्माण एवं विकास में अपूर्व योगदान है। गीता–दर्शन के शिक्षा उपागम देश–काल की सीमा से परे सार्वकालिक एवं सार्वदेशिक है जिनके आधार पर शिक्षा व्यक्ति एवं समाज दोनों के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो सकते है। महर्षि अरविन्द ने गीता के उपदेश को आधुनिक युग में अनुकरणीय माना है।

भश्रीमद भगवतगीता हमारे धर्मग्रन्थों में एक अत्यन्त तेजस्वी और निर्मल हीरा है। यह ग्रन्थ वैदिक धर्म के भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों में वेद के समान आज करीब ढाई हजार वर्ष से सर्वमान्य तथा प्रमाणस्वरूप हो रहा है। इसका कारण भी उक्त ग्रन्थ का महत्व ही है।

–लोकमान्य बालगंगाधर तिलक

गीता भमहाभारत महाकाव्य के भीष्म पर्व का एक अंश है। महाभारत में धृतराष्ट एवं पाण्डु के पुत्र कौरवों एवं पाण्डुवों के मध्य कुरूक्षेत्र के मैदान में हुए युद्ध का वर्णन है। यह युद्ध कौरवों की राज्य लिप्सा तथा पाण्डुवों पर किये गये अन्याय एवं अत्याचार के कारण हुआ था। यह घटना लगभग 1400 ई.पू. की मानी जाती है। युद्ध में कृष्ण पाण्डवों के सहायक थे तथा अर्जुन के रथ का संचालन कर रहे थे। युद्ध–क्षेत्र में जब अर्जुन के विपक्षी सेना में अपने ही सम्बन्धियों एवं गुरूजनों की हत्या करने के विचार–मात्र से विरक्ति हो गई तथा अपने कर्त्तव्य–पथ से विचलित हो गया तो कृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया वही गीता में संग्रहीत है। गीता में कुल 18 अध्याय है तथा सात सौ श्लोक है। इसके प्रथम छः अध्याय ईश्वर ज्ञान से सम्बन्धित, तथा इसके बाद छः अध्याय विश्व ज्ञान (जगत) तथा अन्तिम छः अध्याय आत्म ज्ञान (जीवात्मा) की व्याख्या करते है। आरम्भ से अन्त तक इसमें धृतराष्ट्र व संजय तथा कृष्ण व अर्जुन के संवाद हे। महाभारत–युद्ध के सन्दर्भ में कृष्ण द्वारा निष्काम कर्म–योग का जो उपदेश दिया गया, वह अर्जुन को पथ पर सक्रिय कर सका और अन्त में पाण्डवों की कौरवों पर विजय, अधर्म या अन्याय पर धर्म या न्याय की विजय में परिणित हो गई।

निष्काम कर्मयोग की उद्‌भावना तथा प्रवृत्ति व निवृत्तिमार्ग व कर्म, भक्ति व ज्ञान मार्ग से अद्‌भुत समन्वय द्वारा गीता–दर्शन ने तत्कालीन विचारधारा में उत्पन्न विकृतियों का निराकरण ही नहीं किया बल्कि मानव की वैयक्तिक एवं सामाजिक प्रगति का पथ–प्रदर्शन भी किया।

गीता–दर्शन से विकसित शिक्षा–दर्शन के विषय में **डॉ. ओड** मत है – भशिक्षा–दर्शन की दृष्टि से भगवद्गीता अमूल्य निधि हैं, क्योंकि उसमें सभी प्रचलित दार्शनिक मान्यताओं तथा सिद्धान्तों का समाहार मिलता है। भारतीय शिक्षा–दर्शन का सार यदि यही देखना हो वह गीता में दिखाई देता है।

गीता दर्शन के मूल तत्व –

- **कर्मयोग (The Path of Action)** – 'कर्म' शब्द का अर्थ– 'कृत कार्य' अथवा 'किया हुआ कार्य' होता है। गीता में कर्म शब्द का अभिप्राय सामाजिक दायित्व से है तथा योग का अर्थ संलग्न करना या समर्पित करना होता है।

  गीता में कर्मयोग का सार अध्याय 2 श्लोक–47 द्वारा निम्न प्रदर्शित होता है –

  कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
  मा कर्मफलहेतुर्भू माते संगोंऽस्त्वकर्मणि।। 2/47

  अर्थात कर्म पर ही तुम्हारा अधिकार है, कर्मफल पर नहीं। अतएव कर्त्तव्य कर्म का पालन करते रहना और अच्छे–बुरे किसी प्रकार के फल की इच्छा न रखना ही कर्मयोग है।

- **आत्मा की अमरता (Immortality of Soul)** – गीता में उपनिषदों के आत्मज्ञान का विकसित रूप मिलता है। गीता में कृष्ण ने कहा है– शरीर का अन्त होता है, किन्तु उसमें निवास करने वाली आत्मा का नहीं । आत्मा नित्य होती है, अग्नि उसे जला नहीं सकती, जल उसे गीला नहीं कर सकता और वायु भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती है। आत्मा न कभी जन्म लेती है, कभी मरती है, क्योंकि वह अजन्मा नित्य सनातन है।

- **निवृत्ति एवं प्रवृत्ति मार्ग का समन्वय (Integration of the Ideal of action and Contemplation)** – गीता में कृष्ण ने उपनिषदों के निवृत्ति मार्ग (सन्यास व वैराग्य) को कर्मयोग का रूप देने की चेष्टा की है तथा इसका समन्वय प्रवृत्ति मार्ग अर्थाथ लोक जीवन के कर्त्तव्य व धर्म से किया है। गीता का उद्देश्य प्रवृत्ति व निवृत्ति मार्गों के दो आदर्शो के मध्य सुन्दर सन्तुलन की खोज करना है। जिससे दोनों की उत्कृष्टता सुरक्षित रह सके। यह कर्मशील जीवन का पाठ सिखाता है किन्तु फिर भी स्वार्थ भावना को कोई स्थान नहीं देता।

- **अपरा एवं परा प्रकृति का भेदता ईश्वर** – गीता में सृष्टि की रचना को दो प्रमुख प्रकारों में विभक्त किया है– अपराप्रकृति तथा परा प्रकृति। परा व अपरा प्रकृति के उपर ईश्वर तत्व है। वस्तुतः जीव (आत्मा) ईश्वर का ही अंश है। गीता का उपदेश है कि ईश्वर अथवा ब्रह्म ही जानने योग्य है। शिक्षा का चरम लक्ष्य इसी आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होनी चाहिए। निष्काम कर्मयोग से मनुष्य का मोह नष्ट होता है और वह तत्व ज्ञानी होकर मोक्ष प्राप्त करता है।

- **कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्ति योग का समन्वय** – गीता में इन तीनों का अद्‌भुद समन्वय प्रस्तुत किया गया है। गीता में भक्ति योग को भी कर्मयोग एवं ज्ञान योग के समान ही महत्व दिया गया है।
- **स्थित प्रज्ञ अथवा पूर्ण मानव का आदर्श (Ideal of whole Man)** – गीता के अठारहवें अध्याय में इस सन्दर्भ में कहा है– जो व्यक्ति मन में स्थित सारी कामनाओं को त्याग देता है, वह स्थित प्रज्ञ है अर्थात उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

गीता दर्शन का शिक्षा–उपागम –

1. **गीता के अनुसार शिक्षा का अर्थ** – *'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते'* गीता में शिक्षा को ज्ञान के अर्थ में ग्रहण किया है। भगीता के अनुसार शिक्षा जन्म–जन्मान्तर तक चलने वाली प्रक्रिया है। ज्ञान दो प्रकार का है– सांसारिक तथा आध्यात्मिक ।
2. **शिक्षा के लक्ष्य एवं उद्‌देश्य –**

भसर्वभूर्तषु यनै कम् भावमव्ययमीक्षते।

अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।। 18ध्20

गीता के उपरोक्त श्लोक में ज्ञान की परिभाषा को इस प्रकार बताया है कि, जिसके द्वारा सब प्राणियों में केवल एक निर्विकार भाव देखा जाता है, तथा विविधता में जहां एकता दिखाई देती है, उसी को सात्विक ज्ञान कहा जाता है। गीता के अनुसार शिक्षा वह है जो प्रत्येक व्यक्ति में निहित ब्रह्म अथवा परमात्मा की अनुभूति कराने में सहायक होती है। शिक्षा का लक्ष्य मनुष्य को उस अज्ञान से मुक्त कराना है जो भेद उत्पन्न करने वाला है तथा आत्मानुभूति में बाधक है तथा उसे उस प्रकाश में ले जाना है जो भेद में अभेद का दर्शन करवाता है। जो सभी प्राणियों में संस्थित परमात्मा की अनुभूति कराता है। गीता दर्शन में शिक्षा उपागम में शिक्षा का लक्ष्य व्यक्ति को पूर्ण मानव के रूप में विकसित करना है जो आत्मशुद्धि के साथ दूसरे प्राणियों की सेवा में ही ईश्वर की सेवा समझकर निष्काम भाव से सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करता है।

3. **शिक्षण–विधि–** गीता का वर्ण्य विषय कर्म, ज्ञान एवं भक्ति है। इन तीनों को एक रूप प्रदान कर योग का नाम दिया है। इस योग के लिए जिन शिक्षण विधियों का प्रयोग किया गया है वे है–
   - **कर्म योग** – क्रिया विधि, स्वानुभव विधि, इन्द्रिय प्रशिक्षण विधि, अभ्यास विधि, खेल विधि।
   - **ज्ञान योग** – तर्कपूर्ण विश्लेषण विधि, विचार–विमर्श विधि, संवाद विधि, स्वाध्याय विधि, सापेक्षता विधि, आगमन–निगमन विधि।
   - **भक्ति योग विधि** – श्रवण विधि, संगीत विधि, स्मरण विधि, ध्यान विधि, केन्द्रीय विधि।

4. **पाठ्‌यचर्या** – गीता दर्शन में पाठ्‌यचर्या को दो भागों में विभक्त किया हैः–
   - **अपरा विद्या** – अर्थात भौतिक जगत का ज्ञान जिसके अन्तर्गत विज्ञान की सभी शाखाओं का अध्ययन तथा ज्ञानेन्द्रियों एवं मस्तिष्क(बृद्धि) के माध्यम से प्राप्त इन विज्ञानों का अनुभव सम्मलित है। इसमें विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, ज्योतिष, ललित कला, नृत्य कला, संगीत कला, काव्य, गणित आदि विषयों को इसके पाठयक्रम में स्थान दिया गया है।
   - **परा विद्या** – इसके अन्तर्गत आत्म–ज्ञान एवं ब्रह्म–ज्ञान को माना गया है। जिसके द्वारा जगत्‌ में अन्तर्निहित चेतन सत्ता की अनुभूति होती है।इसमें आध्यात्म शास्त्र, दर्शन शास्त्र इस प्रकार के विषय है।
5. **शिक्षक–शिक्षार्थी सम्बन्ध** – गीता दर्शन के अनुसार शिक्षार्थी के शरीर व आत्मा का समान महत्व है। आत्मा परमात्मा का ही अंश है। अतः प्रत्येक शिक्षार्थी में आत्मा रूपी परमात्मा ही निवास करता है। शिक्षार्थी के प्रत्येक कार्य आत्मा अर्थात अन्तःकरण की प्रेरणा से होते है। इस दर्शन में शिक्षार्थी से अपेक्षाऍ की गई है कि वह संयम, विनय, शिक्षक के प्रति श्रृद्धा व समपर्ण की भावना जैसे गुणों से युक्त हो। इसी प्रकार शिक्षक से भी कुछ अपेक्षाऍ की गई है कि वह शिक्षार्थी में आत्म–विश्वास व आशावाद उत्पन्न करें, वह शिक्षार्थी के आयुवर्ग के अनुकूल, अभिरूचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुरूप उसे शिक्षित कर उसका आत्मपरिष्कार करें तथा निष्काम कर्म–योग की भावना से जनहित के कार्यो में उसे प्रवृत्त करे जिससे कि वह शिक्षा का चरम लक्ष्य मोक्ष (जीवन में शांति तथा आनन्द) प्राप्त कर सकें।

अतः शिक्षा दर्शन के विकास में गीता का योगदान अतिमहत्वपूर्ण है यह शिक्षा दर्शन किसी काल विशेष के लिए नहीं था, अपितु वह सार्वकालिक है। जब–जब समाज में विकृत्तियॉ, कुरूतियॉ उत्पन्न होती है तब–तब समाज को उन्नत करने के लिए परमात्मा को किसी शिक्षक के रूप में अवतार लेना पड़ता है और शिक्षक ही सामाजिक परिवर्तन के फलस्वरूप समाज में उत्पन्न कुंठा को दूर करने का प्रयास करता है। गीता में कृष्ण ने तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक विकृत्तियों को दूर कर मानव निष्काम कर्मयोग का पाठ पढाने हेतु अवतार लेकर शिक्षक की भूमिका निभाई थी। गीता की शिक्षाऍ अर्जुन की तरह किंकर्त्तव्य–विमूढ हुए प्रत्येक मानव के लिए मार्गदर्शक है। गीता का प्रतिपादित निष्काम कर्मयोग का सन्देश आज मानव के लिए अत्यन्त उपयोगी है। फल की आसक्ति का त्याग द्वारा ही कर्म स्वार्थ के धरातल से उपर उठकर कल्याण का साधन बन सकता है। गीता मनुष्य के सामाजिक स्वरूप पर बल देती है और निःस्वार्थ कर्मशील जीवन का समर्थन करती है। आज मानवता के लिए इस शिक्षा की बहुत उपादेयता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. देवराज, डॉ0 नन्द किशोर, भारतीय दर्शन, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पेज नं. 93–105।
2. ओड़, डॉ0 लक्ष्मीलाल के., 'शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि', राज0हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, ''श्रीमद्भागवत गीता का शिक्षा दर्शन'' पेज नं. 128–139।
3. माथुर, डॉ0 एस0एस0, 'शिक्षा के दार्शनिक तथा सामाजिक आधार', विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, ''भारतीय शिक्षा दर्शन– ऐतिहासिक परिपेक्ष्य में'', पेज नं0 151–171
4. शर्मा, डॉ0 आर.ए., 'शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक मूल आधार', आर.एल. बुक डिपो, मेरठ, ''श्रीमद्भागवत गीता एवं शिक्षा'', पेज नं. 298–311
5. पारीक, प्रो0 मथुरेश्वर, शर्मा, प्रो0 रजनी, 'उदीयमान भारतीय समाज और शिक्षा', शिक्षा प्रकाशन, जयपुर '' विभिन्न दर्शनों का योगदान'', पेज नं. 29–90
6. दास गुप्त, एस.एन., 'भारतीय दर्शन का इतिहास–भाग–2, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, ''भगवद्गीता दर्शन'', पेज नं. 381–470